Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 5, April-2019, ISSN 2230-7540

हिन्दी के प्रमुख उपन्यासों में विभाजनोपरान्त अस्तित्व की तलाश में भटकते शरणार्थी

Pardeep Kumar[1]* Dr. Gyani Devi Gupta[2]

[1] Research Scholar, Guru Kashi University, Sardulgarh Road, Talwand Sabo Bathinda, Punjab

[2] Head of Hindi Department, Assistant Professor, Guru Kashi University, Sardulgarh Road, Talwandi Sabo, Bathinda, Punjab

सारांश – *साहित्य और समाज का सम्बन्ध, साहित्यकारों द्वारा समसामयिक परिस्थितियों का युगबोध करना, आलोच्य उपन्यासों का श्रेष्ठता के फलस्वरूप प्रमुख हो जाना। इन्हीं प्रमुख उपन्यासों के पात्रों का विभाजनोपरान्त अस्तित्वहीन होकर अस्तित्व की तलाश में लगातार संघर्षमयी-जीवन व्यतीत करना। जमींदारी के उन्मूलन का प्रभाव, आर्थिक तंगी की विवशता, नयी प्रशासनिक प्रणाली में सामंजस्य न कर पाना, मार-काट का असर। हिन्दी के प्रमुख उपन्यासों में अस्तित्व की तलाश सम्बन्धी प्रसंगों का मिलना। यशपाल कृत 'झूठा सच' की पात्राएँ उर्मिला, कनक और तारा का खुन्नस होना, भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'वह फिर नहीं आई' की पात्रा श्यामला का अस्तित्व की तलाश करते-करते वेश्यावृति करना, बदीउज़्ज़माँ कृत 'छाको की वापसी' में छाको का इलाही मास्टर के झूठे वायदों में फस कर जन्नत की तलाश के लिए पाकिस्तान जा कर अस्तित्व खो देना। 'जिन्दा मुहावरे' उपन्यास में नासिरा शर्मा का पात्र निज़ामउद्दीन का विभाजनोपरान्त कराची में विस्थापित होना, इस पात्र के पास धन, मान-मर्यादा के होते हुए भी विवादास्पद जीवन यापन करना। 'सूखा बरगद' उपन्यास का पात्र परवेज़ का विदेश में विस्थापित होकर भी अस्तित्व कायम न कर पाना। 'लौटे हुए मुसाफिर' उपन्यास के पात्रों का उजड़े हुए चिकवों गाँव में वापस आ कर फिर से अस्तित्व बनाने का प्रयास करना। राही मासूम रज़ा के उपन्यास 'आधा गाँव' के पात्र पाकिस्तान जाये या भारत में रहने को वरीयता देकर दोराहे में होना। 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास के पात्र ऐतिहासिक पात्र होते हुए भी अस्तित्व बनाए रखने के लिए अदालत में सफाई देते फिरते हैं। 'घर वापसी' उपन्यास का पात्र कमालउद्दीन धर्म बदलने के पश्चात् भी मुसलमानों की नफ़रत का शिकार हुआ, मधुर कुलश्रेष्ठ द्वारा इस दुःखद घड़ी को पेश करना है। कृष्णा सोबती का 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान' उपन्यास में अस्तित्व कायम करने के लिए प्रयत्नशील होना। 'वाह! कैम्प' उपन्यास में द्रोणवीर कोहली का अपने सगे-सम्बन्धियों के साथ रहते हुए, अस्तित्व के लिए संघर्ष करना। इस शोध पत्र में हिन्दी के प्रमुख उपन्यासों को प्रश्रय बना कर शरणार्थी औपन्यासिक पात्र क्यों अस्तित्वहीन हुए, अस्तित्व कायम करने के लिए उनको कैसा-कैसा संघर्ष करना पड़ा, सभी पहलुओं पर चिन्तन करना ही इस शोध-पत्र का ध्येय है।*

बीज शब्दः- *साहित्य और समाज, विभाजनोपरान्त हिन्दी के प्रमुख उपन्यासों में अस्तित्ववाद, उपन्यासों में सारगर्भित कथ्य और शरणार्थियों द्वारा अस्तित्व की तलाश*

----------X----------

मूल प्रतिपादनः-

साहित्य को समाज का दर्पण इस लिए कहा जाता है क्योंकि साहित्य और समाज में घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता हैं। साहित्य और समाज दोनों ही एक दूसरे के पूरक कहे जा सकते हैं। साहित्यकार किसी का दास नहीं होता, एक सच्चा साहित्यकार युग की बदलती करवट को पहचान कर, साहित्य के माध्यम से विविध विधाओं में ढालकर अभिव्यक्त कर समाज के ही सामने ले आता है। स्पष्ट है कि साहित्य समाज के साथ चलने वाला आचार-विचार होता है।[1] साहित्य समाज में नया चिन्तन, नयी चेतना का प्रतिपादन करता है। समाज की परिकल्पना को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है। समाज व्यक्तियों का समूह नहीं होता अपितु व्यक्तियों के बीच पाये जाने वाले पारस्परिक सम्बन्धों की व्यवस्था को समाज कहते है। इस परिकल्पना की दृष्टि से समाज व्यक्तियों का न तो संगठन है और न ही इसका कोई

www.ignited.in

भौतिक स्वरूप है, समाज पूर्णतया अमूर्त है। समाज सामाजिक सम्बन्धों की व्याख्या है। जिस का उद्भव और विकास एक विशेष पद्धति से होता है, वह है, समाज में रहने वाले जीवित प्राणी, सर्वश्री मैकाइबर महोदय के मतानुसार," समाज सामाजिक सम्बन्धों का एक जाल है अर्थात समाज व्यक्तियों से नहीं बल्कि व्यक्तियों के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों से है और जब यह सम्बन्ध एक व्यवस्था में बंध जाते है, तब उस व्यवस्था को समाज कहते है"।[2] यही कारण है कि साहित्यकारों के द्वारा समसामयिक परिस्थितियों का युगबोध करते श्रेष्ठ साहित्य का प्रतिपादन किया गया हैं। समाज का बुद्धिजीवी वर्ग, सुविज्ञ पाठक, समीक्षाकार, रचित साहित्य की प्रत्येक कसौटी की जाँच पड़ताल करते हैं। परिकल्पनाओं पर पूरा उतरने वाले उपन्यास प्रमुख बन जाते हैं। इस शोध-पत्र में हिन्दी के उपन्यासों की समीक्षा कर नये तथ्यों का अनुशीलन करने का प्रयास किया जा रहा है। इस शोध-पत्र का सम्बन्ध विभाजनोपरान्त शरणार्थियों के अस्तित्व से हैं, तो फिर अस्तित्ववाद क्या है ? जानना परम आवश्यक हो जाता है। अस्तित्ववाद को अंग्रेजी में EXISTENTIALISM कहा जाता है। अस्तित्ववाद उन्नीसवीं शताब्दी का एक नवीन चिंतन है। अस्तित्ववादी स्वीकार करते हैं कि प्रत्येक घटनाक्रम का कोई-न-कोई प्रयोजन अवश्य होता है परन्तु मानव के अस्तित्व का कोई तार्किक योजनाबद्ध प्रयोजन नहीं होता है। सामाजिक उतार-चढ़ाव, अलगाव और संघर्ष प्रत्येक मानव के अस्तित्व को प्रभावित करता है। भारत विभाजन जैसी घटना ने भी विभाजनोपरान्त सभी प्रभावितों को पीड़ित किया। संवेदनशील साहित्यकारों ने अवसन्न स्थिति के कई पहलुओं को लेकर उपन्यासों में कलमबद्ध कर दिया। विभाजनोपरान्त शरणार्थी अस्तित्व की तलाश में मारे-मारे भटकने लगे। सरकारी स्तर पर सहायता तो क्या मिलनी थी बल्कि प्रशासनिक सुधारों ने भी विस्थापित हो रहे शरणार्थियों को पीड़ित करना शुरू कर दिया। फलस्वरूप विस्थापितों की मनोदशा में तनाव, अलगाववाद, अशान्ति, शारीरिक कष्ट, शोषण व्यग्रता और अस्थायीपन की प्रवृत्ति नज़र आने लगी। सांस्कृतिक संक्रमण के कारण विस्थापित और मूल निवासी दोनों ही विवश थें। शरणार्थियों के लिए नैतिक जीवन स्तर एक दुविधा सिद्ध हो रहा था। कभी-कभी विस्थापित अस्तित्व की तलाश पर खुद को "थाली का बैंगन या धोबी का कुत्ता न घर का न घाट" का समझने लगे।[3] जमींदारी का उन्मूलन भी विस्थापितों के अस्तित्व की तलाश पूरी नहीं कर पाया। 'आधा गांव' उपन्यास की पात्र सकीना जमींदारी के खातमें का कारण भी विभाजन को स्वीकार करती कहती है, "न ई मुआ पाकिस्तान बनता, न जमींदारी खतम होती। गँधिया कहिस कि अच्छा मियाँ लोग पाकिस्तान बना लिये हो तो जाओ जहन्नुम में....जमींदारी खतम।"[4] इस वक्तव्य से यह भी स्पष्ट है कि जमींदारी का उन्मूलन भी विस्थापितों के अस्तित्व की तलाश पूरी नहीं कर पाया। मार-काट का सामना करते शरणार्थी आर्थिक तंगी से विवश हो गये। अमीनाबाद की मुख्य दुकानों के सामने शरणार्थियों ने प्रायः सभी जगह फुटपाथ पर दुकानें लगा ली थी। प्रतिद्वन्द्विता में हररोज उन्माद होने लगे। अमीनाबाद के मूल निवासियों का मानना था कि उन्होंने हिन्दू शरणार्थी लोगों का स्वागत और सहायता करी थी; अब वही शरणार्थी उनका पेट काट रहे हैं। मूल निवासी और शरणार्थी दोनों को आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ रहा था।

'झूठा सच' उपन्यास में यशपाल का पात्र जयदेव पुरी कनक को अपनी आर्थिक विपदा का ब्यौरा देता कहता है, "अँधेरे मार्ग में उसके गले पर छुरी रख कर उसकी जेब खाली कर ली गयी। भूख से व्याकुल होकर वह अपने कपड़े बेचने के लिये भटकता रहा। दो रोटी पा लेने के लिये उसने तंदूर पर जूठे बर्तन माँजे.....।"[5] स्वाधीनता का सुखद स्वप्न भी पूरा होता दिखाई नहीं पड़ रहा था। मुखौटेबाजी, शरणार्थी कैम्पों की समाप्ति और नयी प्रशासनिक प्रणाली से शरणार्थियों का सामंजस्य न कर पाना, किसी प्रकार का काम-धन्धा न होना, बसने के लिए मकान या भूमि, व्यवसाय का सही प्रबन्धन न होने के कारण शरणार्थी अपना अस्तित्व अन्धेरे में अनुभव कर रहे थें। ऐसे ही कई प्रसंगों की व्याख्या हिन्दी के उपन्यासों में विभाजनोपरान्त अस्तित्व की तलाश पर भटकते शरणार्थियों के माध्यम से मिलती हैं। हिन्दी के प्रमुख उपन्यासों में अस्तित्व की तलाश के कथ्य आलोच्य उपन्यासों में इस प्रकार मिलते हैं। यशपाल के कालजयी उपन्यास 'झूठा सच' भाग-दो में शरणार्थी अस्तित्व की तलाश करते, अमृतसर, जालन्धर, होशियारपुर अम्बाला के कॉलेजों, स्टेशनों और अन्य स्थानों पर भटक रहे हैं। उर्मिला अन्धकारमयी भविष्य से चिंतित जयदेव पुरी को अपना भविष्य स्वीकार कर लेती है। बे जी उर्मिला का मानसिक संतुलन ठीक करने के लिए, उसको अफीम खाने की सलाह देती है। खानाबदोश की तरह आये शरणार्थी रिहायश के लिए, गहरी साँसें लेते नज़र आते हैं। लोगों के शरीर भूख के मारे सूखें पत्तों की तरह सूख गये थें। शरणार्थी अपना अस्तित्व कायम करने के लिए, कब्रों की ईट उखाड़ कर मकान बनाने लगे, ताकि वे सभी प्रलयकारी आँधी का सामना कर सके। बंगाल के अकाल में, बिहार के जलजले में, पूर्वी बंगाल के दंगों में, यू.पी. की बाढ़ों में, फस कर लोग हाथ पसार कर भीख माँगते फिरते थें। अपने अस्तित्व की तलाश में एक मुस्लिम औरत ने विवश होकर एक दूध पीता बच्चा महात्मा गाँधी के पायों में रखते हुए कहा, "यह यतीम हो गया है। इसके जवान माता-पिता दोनों कत्ल हो गये हैं।"[6] इसके अस्तित्व का

www.ignited.in

क्या बने गा। इसी तरह के कई पात्र जैसे- तारा, कनक, जयदेव पुरी, अपना अस्तित्व कायम करने के लिए तड़प रहे हैं। यही कारण है कि सामाजिक वातावरण और ऐतिहासिक यथार्थ के बेबाक चित्रण को ज्यादातर सही साहित्यिक समझ और अभिव्यक्ति से जोड़ पाने में यशपाल को पर्याप्त सफलता मिली है।[7] समीक्षाकार इसके पक्ष में बोले या विपक्ष में किन्तु एक तटस्थ लेखक या पाठक सही मानेगा कि 'झूठा सच' के सदृश विशाल फलक पर संतुलित रूप में लिखित हिन्दी का वस्तुतः श्रेष्ठ उपन्यास है।[8]

'वह फिर नहीं आई' भगवतीचरण वर्मा का 1960 में प्रकाशित विभाजनोपरान्त अस्तित्व की तलाश में भटकते शरणार्थियों का एक जीवन्त दस्तावेज़ है। उपन्यासकार ने रानी श्यामला और जीवनराम के अगाध प्रेम को लेकर इस उपन्यास का कथानक तैयार किया। रावलपिंडी में जीवनराम के पिता जी एक बहुत बड़े सौदागर थे। घर-बाहर, नौकर-चाकर, धन-दौलत सब कुछ दोनों को विभाजनोपरान्त रावलपिंडी में छोड़ कर हिन्दुस्तान में शरण लेनी पड़ी थी। उपन्यास के आरम्भ से अन्त तक दोनों अस्तित्व की तलाश में भटकते फिरते है। विवश हो कर रानी श्यामला और जीवनराम, ज्ञानचन्द जैसे विलासी और स्वार्थी मध्यवर्गीय व्यवसायी के संपर्क में आते हैं। रानी श्यामला ज्ञानचन्द से बाते करती कहती है, "मैं पूरी तौर से शाहबाज़ की नहीं बन सकी थी, बन भी नहीं सकती थी। इन छह महीनों में शाहबाज़ भी यह जान गया था। शाहबाज़ जैसे जानवर के साथ मेरा किसी तरह का आत्मिक लगाव भला कैसे हो सकता था। उसकी काम-पिपासा शान्त हो चुकी थी। मैंने कहा, "मैं जीवनराम के साथ जाऊँगी, मैं उसकी हूँ, वह मेरा है।"[9] जीवनराम का शहबाज़ का कर्जा चुकाने के लिए गबन करने से जेल जाना पर रानी श्यामला अकेलेपन का शिकार हो कर अस्तित्वहीन हो जाती है, जीवनराम को जेल से रिहा करवाने के लिए अपनी इज्जत तक दाव पर लगा देती है। ज्ञानचन्द का पैसा चुकाने के लिए वेश्यावृति पर उतर आती है। वेश्यावृति से कमाये पैसों से ज्ञानचन्द का कर्ज चुका कर जीवनराम की अंत्येष्टि क्रिया करने के प्श्चात् वह फिर नहीं आई। सच में रानी श्यामला विभाजनोपरान्त अस्तित्व की तलाश में जीवन व्यतीत करती रही। भगवतीचरण वर्मा ने इस उपन्यास के माध्यम से रानी श्यामला को मनोरंजन का साधन बना कर, रानी श्यामला को बड़े ही अस्वाभाविक रूप में प्रकट किया है।[10] जो औरत के अस्तित्व की तलाश की त्रासदी को दर्शाता है।

'छाको की वापसी' उपन्यास बदीउज़्ज़माँ द्वारा 1975 को प्रकाशित होकर सुविज्ञ पाठको के हाथों में पहुँच गया। इस उपन्यास में ख़ाज़े बाबू स्वयं उपन्यासकार है। जो विभाजनोपरान्त छाको नामक पात्र के इलाही मास्टर के जन्नत की प्राप्ति के फरेब में फस कर सरहद पार कर पाकिस्तान में चला जाता है। अपने ही धर्म के लोगों के साथ अपने आपको मुहाजिर कहलाता है। ख़ाज़े बाबू से हिन्दुस्तान वापसी की गुहार लगाता है। आजकल आप को छाको का नाम पासपोर्ट पर अब्दुश्कूर वल्द महमूद खलीफा अंकित था। वह पाकिस्तान का नागरिक बन गया था। छाको उपन्यासकार को आप बीती सुनाता हुआ कहता है, "स मानिये बाबू। इलाही मास्टर धोखा किहिन हमरे साथ। हम कभी ना चाहा था पाकिस्तान जाएको। इलाही मास्टर बोलिन कि फारम भरे से कोई नुकसान ना होगा। जब चाहो वापस जा सको।"[11] छाको मुहाजिर बन कर पाकिस्तान में अपना अस्तित्व तलाश रहा है। साथ-ही-साथ भारत में पाकिस्तान का नागरिक होने के कारण केवल वीजा लेकर ही रह सकता है। इस समय हिन्दुस्तान छाको का देश नहीं है। उसका मुल्क तो पाकिस्तान है। सच में 'छाको की वापसी' उपन्यास में विभाजनोपरान्त अस्तित्व की तलाश में मारे-मारे फिरते छाको की पीड़ित गाथा है। बदीउज़्ज़माँ ने साहित्यकार शानी और राही मासूम रज़ा की औपन्यासिक परम्परा को आगे बढ़ाया है। 'छाको की वापसी' अस्तित्ववान लोगों के अस्तित्वहीन होने की विस्फोटक कारूणिक व्यथा है। 'छाको की वापसी' उपन्यास में छाको के मोहभंग का चित्रण किया है।[12]

'जिन्दा मुहावरें' उपन्यास की रचना नासिरा शर्मा ने 1994 को की। सारा ही कथानक भारत के विभाजन की त्रासदी से सम्बधिन्त है। विभाजनोपरान्त दोनों तरफ से विभाजन से प्रभावित पीड़ित इधर-से-उधर आये और गये। भारतीय मुसलमान जो पाकिस्तान न जा कर भारत में ही रह गये, उन मुसलमानों को भारत में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। सब से बड़ी दुःखद बात उनका मुख्यधारा से कट कर अलगाव के बोध का था। समीक्षाकार, इतिहासकार आज यह बात सिद्ध कर रहे हैं कि देश का बंटवारा मुसलमानों के लिए भी लाभकारी नहीं था। बंटावरे के समय धर्मान्धता की तो जीत हुई, पर मनुष्यता का हनन हो गया।[13] नासिरा शर्मा ने बंटवारे के पश्चात् भारत में रह गये, मुसलमानों और पाकिस्तान चले गये, मुसलमानों के दर्द को बड़ी सहानुभूति से इस उपन्यास में अंकित किया है। उपन्यास स्पष्ट करता है कि भारत से पाकिस्तान गये मुसलमान मुहाजिर हो गये। भारत में रह गये मुसलमान राष्ट्र-भक्ति के कारण अस्तित्वहीन हो गये। भारत-पाक बंटवारे ने दोनों तरफ के लोगों को प्रभावित किया। एक बेहतरीन अस्तित्व की तलाश

www.ignited.in

पर लोग सरहद पार करने लगे। सभी का खून सफेद हो गया। लोग उज्ज्वल भविष्य की कामना कर पाकिस्तान चले गये परन्तु अस्तित्व खतरे में देख कर भारत वापसी करने लगे। इस तथ्य को स्पष्ट करता उपन्यास का पात्र कहता है, "सुना है, पुराने इमाम मौलाबख्श का लड़का पाकिस्तान से लौट आया है। शर्म के मारे गाँव नहीं आया। लखनऊ में मुँह छिपाता फिरता, इधर से उधर मारा-मारा फिरता है। जब्बार को दिखा था।"[14] दूसरी तरफ रहीमउद्दीन अपने बेटे निज़ाम के प्रति चिंतित होता है। भारती मुसलमान उज्ज्वल भविष्य और शानदार अस्तित्व की तलाश में पाकिस्तान गये थें। भारती मुसलमानों का मानना था कि पाकिस्तान में दौलत की बारिश होती होगी। ऐसा कुछ भी नहीं था। मुहाजिरों ने पाकिस्तान में अपना अस्तित्व कायम करने के लिए सख़्त मेहनत की थीं। सब कुछ किया, फिर भी भारतीय मुसलमान पनाहगीर ही कहलाते रहे। लोग बेइज्जती की जिन्दगी की बजाए इज्जत की मौत को बेहतर मानने लगे थें। निज़ामद्दीन पैंतालीस वर्षों के बाद भारत आ कर दुखी होता है, क्योंकि भारत में उसके भाई का भविष्य अधिक उज्ज्वल था। वह भारत में कलक्टर लग चुका था। भारतीय बाशिन्दें पाकिस्तान में जा कर भी अपने भविष्य की तलाश भारत में करते हैं। इसी पर निज़ाम अपना वक्तव्य रखते हुए कहता है, "जब पाकिस्तान में घुटन लगती है तो लोग उधर से इधर भाग आते हैं, जब अकेलापन यहाँ काटता है तो फिर पाकिस्तान चले जाते हैं। वहां उनका पूरा ख़ानदान मौजूद है। कोई उनको रोक नहीं सकता। ठहरे लकीर के फकीर आदमी।"[15] कह कर अपने अस्तित्व का परिचय् देते हैं। गोलू एम. ए. फस्ट पोजीशन में पास कर गयासउद्दीन उर्फ गोलू कलक्टर बन कर भारत में पूरी मान-इज्जत पाता है। जबकि निज़ाम पाकिस्तान में धन, मान-मर्यादा के होते हुए भी विवादास्पद जीवन व्यतीत कर रहा है।

सन् 1961 में मंजूर एहतेशाम का उपन्यास 'सूखा बरगद' प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में भी विभाजनोपरान्त मुस्लिम समाज के कठमुल्लेपन पर चर्चा की गयी है। मुस्लिम समाज की दुव्यवस्था के कारण तलाश करने का प्रयास किया गया है। रशीदा इस उपन्यास की प्रमुख पात्रा है। वह मध्यवर्गीय परिवार से सम्बधिन्त है। इस उपन्यास के पात्र सुहेल की स्थिति त्रिशंकु के समान है क्यांेकि वह धोबी के कुत्ते की तरह सभी के विचारों से प्रभावित हो जाता है। इस उपन्यास में भारत के राज्य भोपाल की परिस्थितियों का वर्णन हैं, जहां पर विभाजनोपरान्त दंगो का भी कोई असर नहीं होता। इसी उपन्यास का पात्र परवेज़ विभाजनोपरान्त अमरीका में रहने लगता है। परन्तु अस्तित्व की तलाश पर भारत लौट जाना चाहता है। इसी लिए पूरी निष्ठा और विश्वास से परवेज़ कहता है, "मुसलमानों के लिए हिन्दुस्तान खास तौर पर पाकिस्तान या दूसरे इस्लामी देशों के मुकाबले कहीं बेहतर घर है क्योंकि यहां मजहबी कठमुल्लाईयत नहीं और भविष्य में माक्र्सवादक विचारधारा यहाँ की जिन्दगी का रूप बदलकर रहेगी।"[16] प्रो. गोपाल राय का मानना है कि मंजूर एहतेशाम ने 'सूखा बरगद' के माध्यम से देश विभाजन के बाद सामूहिक मुस्लिम मनोभावों को गहरी संवेदनशीलता और तार्किक विचारशीलता के साथ प्रस्तुत किया है।[17]

विभाजनोपरान्त लिखा गया कमलेश्वर का उपन्यास 'लौटे हुए मुसाफिर' चिकवों गाँव वासियों के मोहभंग होने पर उनकी घर वापसी की स्थिति को दर्शाता है। इस उपन्यास में पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने में कमलेश्वर को अच्छी सफलता प्राप्त हुई हैं। आपसी सम्बन्धों को अन्तर्विरोधों और मानसिक अन्तद्र्वन्द्वों तथा तनावों को शरणार्थियों के अस्तित्व से जोड़ कर बारीकी से परखा गया है। उपन्यास में नसीबन, संत्तार, सलमा, साई, बच्चन और मौलाना पात्रों के माध्यम से लोगों की पीड़ा और आकांक्षाओं को अभिव्यक्त किया गया है।18 इस उपन्यास के पात्र भी विभाजनोपरान्त शरणार्थी बन कर अस्तित्व की तलाश में भटक रहे हैं। इसी भटकाव को व्यक्त करती नसीबन कहती है, "यहां इस बस्ती से तो वे उखड़ गए थें, पर गरीबी ने उनकी टांगे जकड़ ली थी और वे सूबे के पश्चिमी जिलों तक पहुँचकर अटक गए थे। सूबे की सरहद पार नहीं कर पाए थे। गरीबों को कोई पाकिस्तान नहीं ले गया था।"[19]

उपन्यासकार राही मासूम रज़ा का जन्म 1925 को गाज़ीपुर में हुआ। 1966 में 'आधा गाँव' को प्रकाशित करवा जनमानस के हवाले कर दिया। इस में पूर्वांचल के गाँवों में रहने वाले मुसलमानों, जमींदारों और मध्यवर्गीय किसानों की जिन्दगी के एक हादसे का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में गंगौली वासियों की खुशहाल जिन्दगी से आरम्भ कर, उनकी दयनीय स्थिति, हिन्दुस्तान में विभाजनोपरान्त बेगानेपन का एहसास, सामान्य जीवन व्यतीत करना, अपने मुल्लक में अनजान बन कर अस्तित्व की तलाश करने का मार्मिक चित्रण किया गया है। विभाजनोपरान्त भारतीय मुसलमान पलायन कर पाकिस्तान में जा कर मुहाजिर बन कर नर्क भोग रहे हैं। इस तड़प को राही मासूम रज़ा ने औपन्यासिक पात्रों के माध्यम से 'आधा गाँव' उपन्यास में प्रस्तुत किया है। मुहर्रम के त्यौहार पर षड़यंत्रों का रचा जाना और दोनों तरफ के लोगों के अस्तित्व पर प्रश्न चिहन लगाते हुए, भारती मुसलमानों को यह एहसास करवाना कि जन्नत की तलाश में लीग द्वारा किए वायदे बेबुनियादी हैं। इन में फस कर पाकिस्तान का समर्थन करके बहुत बड़ी गलती की गयी है। उपन्यास का पात्र अब्बू मियाँ अपने अस्तित्व को खोजता पीड़ित हो कर कहता है, "इनके जिन्ना साहब त हाथ झाड़ के

www.ignited.in

चले गये की हिआँ के मुसलमान जाये, खुदा न करे, जहन्नुम में । ई अच्छी रही। पाकिस्तान बने के वास्ते ओट दें हिआँ के मुसलमान, अउर जब पाकिस्तान बने त जिनवा कहे कि हिआँ के मुसलमान जाये चूल्हे-भाड़ में।"[20] भारतीय मुसलमान ही नहीं, उस पार रह गये अन्य धर्मों के लोग भी अस्तित्वहीन हो रहे थें। अस्तित्व की तलाश में अपने पूर्वजों की धरा से उखड़ कर विभाजनोपरान्त विस्थापन की समस्या में ग्रस्त थें। धार्मिक एवं जातीय शोषण के कारण लोग पलायन किसी अन्य स्थान पर कर रहे थें। आतंकित माहौल पीड़ितों को कहीं दूसरी जगह विस्थापित होने को विवश कर रहा था। इसी तथ्य की पुष्टि एम. एस. रंधावा इस प्रकार करते है, 15 अगस्त, 1947 तक एक सप्ताह के भीतर 11 लाख हिन्दू और सिक्ख शरणार्थी सरहद पार कर पश्चिमी और पूर्वी भारत में पलायन कर चुके थें। 25 लाख शरणार्थी अलग-अलग कैम्पों में शरण ले चुके थें।[21] सभी अपने भाग्य और राजनेताओं को कोसते अस्तित्व की तलाश में भटक रहे थें।

कमलेश्वर का उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' 2000 ई. में प्रकाशित हुआ। उपन्यास मुहम्मद-बिन-कासिम से लेकर आधुनिक काल के ऐतिहासिक पात्र अदीब की अदालत में साक्षात् हुए हैं। इस उपन्यास का विजन धर्म, राजनीति, क्षेत्रीयवाद, आतंक, घृणा, साम्प्रदायिकता, नस्लवाद, जातिवाद, एवं रंगभेद होने के कारण रोज पाकिस्तान बनने की रूपरेखा तैयार हो रही है।[22] इस उपन्यास में पाकिस्तान को एक प्रतीक के रूप में लिया गया है। पाकिस्तान केवल देश नहीं है बल्कि वह साम्प्रदायिक आघार पर बँटे मानवीय इतिहास की त्रासदी भरी गाथा का जीता जागता सबूत है। उपन्यास के सभी पात्र अदीब की अदालत में अपने दोषी अस्तित्व से दोष मुक्त होने का प्रयास करते नज़र आते हैं। 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में अदीब की अदालत में गवाही देता एक ऐतिहासिक पात्र करता है, "पाकिस्तान एक नफ़रत का नाम है। नफ़रज के असूलों पर पाकिस्तान बना है। जिन्ना ने इतिहास नहीं बनाया.....साम्राज्यवादी ताकतों के इतिहास ने जिन्ना को बनाया है।"[23[उपयुक्त वाक्यांश जिन्ना के वास्तविक अस्तित्व को दर्शाता है। औरतों के अस्तित्व पर प्रश्न उठाते यज़ीद कहते है, "हज़रत हुसैन तो सिर्फ कर्बला में शहीद हुए थे, पर मुसलमान औरतों के लिए तो आप लोगों ने पूरी जिन्दगी ही एक कर्बला बना रखी है।"[24] 'कितने पाकिस्तान' की पात्र बेगम सिराज अपने अस्तित्व पर चिन्ता व्यक्त करती हुई कहती है, "यह इतना मुश्किल दौर है कि कही किसी का घर नहीं है.....सब बेघर हो गए है।.....चल तो हम भी पड़े है लेकिन क्या हमें मालूम है कि पाकिस्तान में हमारा घर कहां है।"[25] इस उपन्यास के सभी पात्र दूषित ऐतिहासिक वातावरण को सम्बोधित करते, दोष मुक्त होने का प्रयास करते हैं, वे सभी अपना दामन साफ करते, अपना अस्तित्व बचाते नज़र आते हैं।

मधुर कुलश्रेष्ठ का सामयिक और प्रासंगिक उपन्यास है, 'घर वापसी' है। विभाजनोपरान्त, इस उपन्यास का पात्र कमालुद्दीन मृग-मरीचिका का शिकार बना नज़र आता है। घर वापसी उपन्यास में वैचारिक द्वन्द्व, आत्म संघर्ष और गंगा-जमूनी तहजीब के बावजूद कमालुद्दीन, बेगम सना, सरदारनी फुलवंती, हरपाल कौर, दीनदयाल पण्डा की सहासता के पात्र होते हुए भी अपने अस्तित्व पर गहरी संवेदनशीलता व्यक्त करते हैं। कमालुद्दीन के पिता अपना वक्तव्य पेश करते कहते है, "कितने बरसों से हम लोगों ने अपने वतन आने कि अर्जी लगा रखी थी, अब जाकर हमें परमीशन मिल पाई। हम लोग एक मिनट ख़राब किए बिना अपने वतन की मिट्टी की खुशबू अपने अन्दर भर लेना चाहते हैं। यहाँ की यादें ताज़ा कर लेना चाहते हैं। ताकि हम हमारी बची हुई, जिन्दगी वतन की खुशबू और यादों के सहारें काट सकें। अब पता नहीं कि दुबारा वतन आ पाएंगे भी कि नहीं।"[26]

कृष्णा सोबती का अन्तिम उपन्यास है, 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान।' लेखिका इस उपन्यास की स्वयं पात्र बनकर विभाजनोपरान्त अपने अस्तित्व की तलाश करती, विस्थापित होने के लिए यात्राएँ करती है। सम्पूर्ण उपन्यास में सोबती अपना अस्तित्व कायम करने के लिए स्थानान्तरण करती है। प्रयत्नशील अवस्था में लेखिका उपन्यास में एक पात्र को जो अपने आपको अस्तित्वहीन शरणार्थी मानता है। उस को सलाह देती कहती है, "अमृतसर वाले कैम्प में पड़े रहो, भाई किसी-न-किसी दिन बेटा आन मिलेगा।"[27] स्वयं कृष्णा सोबती को एक पात्र की तरह, अपना अस्तित्व स्थापित करने के लिए, पाकिस्तानी गुजरात से हिंदुस्तानी गुजरात से हिंदुस्तान का भ्रमण करना पड़ा।

'वाह!कैम्प' द्रोणवीर कोहली का उपन्यास है। अन्य उपन्यासों की तरह इस उपन्यास में लेखक स्वयं पात्र की भूमिका निभाता है। विभाजन के बाद अपने रिश्तेदारों, बड़े बुजूर्गों के होते हुए भी अस्तित्वहीन जीवन जीने को विवश है। विभाजन के बाद लेखक खुद अनेक तकलीफों, संघर्षों और संवेदनाओं से जूझता रहता है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने शरणार्थी जीवन और विभाजनोपरान्त संघर्ष को कथा में स्थान देकर पूरी संवेदना को सूक्ष्म अवलोकन क्षमता के साथ प्रस्तुत किया है।[28] द्रोणवीर कोहली एक शरणार्थी होते हुये, लम्बे संघर्षों के बाद ही अपना अस्तित्व कायम करने में सफल हुए।

www.ignited.in

आलोच्य सभी उपन्यास या उपन्यासकारों के पात्र विभाजनोपरान्त शरणार्थी बन कर अस्तित्व की तलाश में भटकते फिरते हैं। इस सत्य को एम. एस. रंधावा अपनी पुस्तक 'आँउट ऑफ़ ऐशिज़' में लिखते है, "दिसंबर 1947 के अन्त तक 12,50000 शरणार्थी भारत में आयोजित 160 शरणार्थी कैम्पों में अस्तित्व की तलाश करते शरण ले चुके थें।[29] शरणार्थी तो अपने आप को किसी-न-किसी तरह विस्थापित कर रहे थें किन्तु राजनीतिज्ञों ने तो विभाजन करते समय परिस्थितियों को गहराई से नहीं जांचा। यही कारण है कि अच्छे-अच्छे, घर-घराने के लोग भी अस्तित्वहीन हो कर जीवन यापन करने लगे। सभी जन्नत के सोनेहरी ख्वाबों में खो कर जिन्ना के इशारों पर नाचने लगे क्योंकि सभी मुसलमानों को लग रहा था कि पाकिस्तान का निर्माण ही सभी झगड़ों का अन्त होगा।[30] जबकि ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। न जन्नत मिली, न ऐशो-आराम, न सुख-चैन, न मौज-मस्ती सब कुछ शेख़चिल्ली का ख़्वाब बन कर रह गया। आज भी पाकिस्तान में मज़बूत कानूनी व्यवस्था न होने के कारण लोग अस्तित्वहीन हुए, शरणार्थियों की तरह अपने ही मुल्क में भटक रहे हैं। ऐसे शरणार्थियों की पीड़ित गाथाएँ, दिन-प्रति-दिन पढ़ने, सुनने को मिलती रहती हैं। शरणार्थियों के साथ घटित इन दुःखद परिस्थितियों को जनमानस के सामने लेकर आना ही इस शोध-पत्र का ध्येय है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आचार्य राम चन्द्र वर्मा, 'लोक भारती प्रामाणिक हिन्दी कोश' संस्करण-1998 पृष्ठ संख्या-925
2. डॉ. ए. एन. शर्मा, 'मानवशास्त्र शब्दकोश' जैन प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण-2002 पृ.सं.-345
3. उषाराज सक्सेना, 'प्रवासी हिन्दी साहित्य की उपेक्षाएँ (लेख) साहित्य अमृत सितंबर-2005 पृ.स.51-52
4. राही मासूम रज़ा, 'आधा गाँव' राजकमल प्रकाशन,नयी दिल्ली,संस्करण-2017 पृ.सं.-298
5. यशपाल, 'झूठा सच' भाग-दो लोक भारती प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2016 पृष्ठ संख्या-225
6. वही पृष्ठ संख्या-60
7. डॉ. भगवतीप्रसाद निदारिया, 'आधुनिक हिन्दी उपन्यास' राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली,संस्करण-2010 पृ.सं.-128
8. डॉ. भगवतीशरण मिश्र, 'हिन्दी के चर्चित उपन्यासकार' राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2010 पृ.सं.-115
9. भगवतीचरण वर्मा, 'वह फिर नहीं आई' राजकमल प्रकाशन,नयी दिल्ली, संस्करण-2009 पृ.सं.-53
10. भगवतीचरण वर्मा, 'भूले बिसरे चित्र' राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2007 पृ.सं.-34
11. बदीउज़्ज़माँ, 'छाको की वापसी' राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1975 पृ.सं.-169
12. डॉ. गोपाल राय, 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास' राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2010 पृ.सं.-435
13. वही पृ.सं.-381
14. नासिरा शर्मा, 'जिन्दा मुहावरे' वाणी प्रकाशण, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-1994 पृ.सं.-28
15. वही पृ.सं.-132
16. मंज़ूर एहतेशाम, 'सूखा बरगद' राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2016 पृ.सं.-219
17. डॉ. गोपाल राय, 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास' राजकमल प्रकाशन,नयी दिल्ली, संस्करण-2010 पृ.सं.-356
18. डॉ. भगवतीशरण मिश्र, 'हिन्दी के चर्चित उपन्यासकार' राजकमल प्रकाशन,नयी दिल्ली,संस्करण-2010 पृ.सं.-254
19. कमलेश्वर, 'लौटे हुए मुसाफिर' ज्ञान भारती प्रकाशन, बम्मई प्रथम संस्करण-1961 पृ.सं.-114
20. राही मासूम रज़ा, 'आधा गाँव' राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली,संस्करण-2017 पृ.सं.-284
21. M.S. Randhawa, "Out Of Ashes" S. Ujjal Singh, Printed by C.N.Raman at New Jack Printing works Ltd. Bombay Edition-1954 page No. IX "Within a weak after the 15th August 1947 about 11lakhs Hindus And Sikhs refugees had crossed over from West to East Punjab and in the following

week another 25 lakhs had collected in concentration camps in West Punjab."

22. डॉ. कुंवरपाल सिंह, 'हिन्दी उपन्यास जनवादी परम्परा' नवचेतन प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2004 पृष्ठ संख्या-178

23. कमलेश्वर, 'कितने पाकिस्तान' राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2016 पृ.सं.-106

24. वही पृ.सं.-121

25. वही पृ.सं.-330

26. मधुर कुलश्रेष्ठ, 'घर वापसी' बोधि प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण-2015 पृ.सं.-86

27. कृष्णा सोबती, 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-2017 पृष्ठ संख्या-30

28. डॉ. गोपाल राय, 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास' राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2010 पृष्ठ संख्या-368

29. M.S. Randhawa (1947). "Out Of Ashes" S. Ujjal Singh, Printed by C.N.Raman at New Jack Printing works Ltd. Bombay Edition-1954 Page No. 32 "By the end of December 1947 over 12,50000 refugees were given shelter in 160 camps all over India."

30. Syed Ali Mujtaba (2002). "The Demand for Partition of India and the British Policy" Mittal Publication, New Delhi, Edition-2002 Page No. 128 "The pipe piper Jinnah was playing the tune of Pakistan as a panacea of all ills and the entire Muslims community without knowing the actually what is meant was humming in one voice."

Corresponding Author

Pardeep Kumar*

Research Scholar, Guru Kashi University, Sardulgarh Road, Talwand Sabo Bathinda, Punjab

pradeep001997@gmail.com